Chapter-5

:: पंचम अध्याय ::

:: प्रेमचन्द के शैशवकालीन अनुभवों के सन्दर्भ में उनके उपन्यासों का अध्ययन ::

:: पंचम अध्याय ::

:: प्रेमचन्द के शैशवकालीन अनुभवों के सन्दर्भ में उनके उपन्यासों का मूल्यांकन

प्रास्ताविक :

मनुष्य के जीवन में शैशवावस्था का महत्व अति अपरिहार्य है । उस अवस्था में उसका मन कच्ची मिट्टी के मानिंद होता है । गुजराती में एक कहावत है — " नानो छोड़ वाळीए तेम वळे " — अर्थात् छोटे पौधे को हम जैसे मोड़ना चाहें मोड़ सकते हैं । मनुष्य के जीवन का भी कुछ ऐसा ही है । बचपन में हम उसे जिस प्रकार के संस्कार देना चाहें दे सकते हैं, उसे जैसा बनाना चाहें बना सकते हैं । हमारे यहाँ कहा गया है — " प्राप्तेतु षोडशे वर्षे पुत्र मित्र वदाचरेत् " — अर्थात् सोलह वर्षों के बाद पिता का

व्यवहार अपने पुत्र के साथ मित्रवत् होना चाहिए । दूसरे शब्दों में कहें तो उसका घड़तर सोलह वर्षों के पहले हो जाता है । उसके बाद उसके साथ मित्रवत् व्यवहार ही रखा जा सकता है । कहावत है — " पाका बरतेx चढ़े काँठा न चढ़े " — अर्थात् घड़ा जब पक्का हो जाता है, उसके बाद उसके कान नहीं बनाए जा सकते । यह अवस्था बड़ी कोमल, बड़ी नाजुक होती है । उस समय जो संस्कार पड़ जाते हैं, पड़ जाते हैं । इस प्रकार शैशव अवस्था वह बुनियाद है, जिसके ऊपर जिन्दगी की इमारत खड़ी होती है । बुनियाद पक्की, मजबूत और मुकम्मिल तो जिन्दगी प"की, मजबूत और मुकम्मिल और बुनियाद कच्ची और सकमादी तो जिन्दगी भी कच्ची और सकमादी । यह तो एक सामान्य मनुष्य की बात हुई, लेखक या कवि तो और भी अधिक संवेदनशील होता है । उस पर तो यह बात और भी शिद्दत से लागू हो सकती है ।

शैशवकालीन अनुभवों का एक लेखक के जीवन में महत्व :

शैशवकालीन अनुभवों का मानव-जीवन में बड़ा ही महत्व है । उसके प्रभाव बड़े दीर्घकालीन होते हैं । कई बार मनुष्य का व्यवहार हमें बड़ा जटिल लगता है । तब हम उसे आकस्मिक या अकारण समझते हैं । किन्तु मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अकारण या अकस्मात् कुछ भी नहीं होता है । कार्य है तो कारण होता ही है । जन्म से लेकर मृत्यु तक या कम-से-कम व्यक्ति की सम्पूर्ण स्थिति तक, उसे जो अनुभव होते हैं, वे अनुभव अचेतन मन में संग्रहीत होते हैं, जिसे लिबिडो कहते हैं । चेतन मन उन अनुभवों को भूल जाता है । अचेतन मन में संग्रहीत लिबिडो के अनुभव कब-कैसे बाहर आते

है, इसे समझना अब आसान काम नहीं है। वस्तुतः जिसे हम अकस्मात या क्षति समझते हैं, वह लिबिडो से निःसृत अनुभवों पर आधृत होता है। इस प्रकार एक तरह से देखा जाए तो लिबिडो मानव-जीवन के अनुभवों का म्यूजियम है।

मेरे निर्देशक महोदय की पत्नी को "कोकरोच फोबिया" है। कोकरोच से वह बहुत डरती हैं। कई महिलाएँ कोकरोच से डरती हैं, किन्तु उनका डर साधारण से कहीं ज्यादा है। वह उसे स्क्रीन पर भी नहीं देख सकतीं। मैंने इसका कारण डाक्टर साहब से पूछा तो उन्होंने बताया कि कदाचित वह बहुत छोटी होंगी तब कुछ कोकरोच उनके शरीर पर आ गए होंगे। उस समय कोई पास में नहीं होगा। खूब हाथ-पैर मारे होंगे। कदाचित उस समय का डर उनके लिबिडो में बैठ गया होगा।

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि बचपन के अनुभव, खट्टी-मीठी-तिक्त स्मृतियाँ, मनुष्य को बहुत दूर तक प्रभावित करती हैं; वह अनेक बार उसकी जुगाली करता है। यह तो एक सामान्य मनुष्य की बात है। कवि, कलाकार, लेखक तो और भी संवेदनशील होते हैं; अतः शैशवकालीन अनुभव तो उनको, और अतएव उनके लेखन को, खूब प्रभावित करते हैं।

शैशवकालीन प्रभाव किसी लेखक के जीवन में कितनी अहमियत रखते हैं, उसका एक अच्छा उदाहरण हमें अर्नेस्ट हेमिंग्वे में मिलता है। हेमिंग्वे नोबल पारितोषिक विजेता साहित्यकार हैं। हेमिंग्वे के बचपन को सुखद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके माता-पिता में किसी प्रकार का हेल-मेल नहीं था। उनकी माता प्रायः पिता पर हावी हो जाती थी। पिता की आर्थिक स्थिति अंग्रेजी मुहावरे के [illegible] सी थी।

मेरे निर्देशक महोदय अक्सर एक व्यक्ति का उदाहरण देते हैं, जिनका व्यवहार अपनी पत्नी के सम्मुख कुछ डरा-सा, और अलग से कुछ आत्मीयतापूर्ण होता था। वे उन्हें "फोर बी" कहते हैं — बीवी बिना के बहादुर बच्चे। तो हेमिंग्वे के पिता भी इसी "फोर बी" कैटेगरी में आते थे। इसका प्रभाव बालक हेमिंग्वे पर भी पड़ा था। अतः हेमिंग्वे के कथा-साहित्य में आने वाले स्त्री-चरित्र प्रायः कठोर मिलते हैं। उनमें माया-ममता-करुणा जैसे स्त्री-सहज कोमल भावों का प्रायः अभाव-सा मिलता है।

डा. आर.टी. मैन ने इस संदर्भ में लिखा है — He was much more Influenced by the conflict between his music loveing mother and his fedher, who loved out door life and mather's dominanting nature over her husband reducing him to a henpeact husband on Hamingway. This situation had profound influenc. It bread him and intense and might have been responcible for his brockn marriage with Poline his second wife In terms of literary expressions, It laid heming way either to portray woman through the midum of a wishful fillment or in the form of the ~~midium~~ ~~of a wishful~~ dominating vigirous woman He content hartly and forth rightly in fact in his movels hamig ⊕

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शैशवकालीन अनुभव लेखक को दूर तक प्रभावित करते हैं, क्योंकि उसके साथ वंश-परंपरा से प्राप्त विशेषताएं तथा जातीय स्मृतियाँ भी संलग्नित होती हैं। राबर्ट लिडले ने इस संदर्भ में लिखा है —

" It has been generally dictated to him by his nature or his early environment the importants of early environment in deter mind a writers Range could be Proud over and over again. 2

शैशवकालीन अवस्था में शिशु जगत के प्रति अधिक उन्मुक्त रूप से क्रियाशील होता है । प्रसिद्ध उपन्यासकार फ्रान्सिस मौरायियो ने इस बात का स्वीकार किया है कि उन्होंने उनके कई उपन्यासों में किशोरावस्था के अनुभवों को लेखन का आधार बनाया है ; यथा — " All my novels take place in the period contemporary . 3 with my adole seent and my youth.

न केवल जीवनगत अनुभव , किन्तु इस समय का पढ़ा हुआ भी , लेखक को बहुत प्रभावित करता है । बचपन से लेकर किशोरावस्था तक शिक्षा या स्वाध्याय हेतु वह जो पढ़ता है , उससे उसके अन्तर्मन का निर्माण होता है और जो उसके लेखन को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करता है — what you read in adolesecent can go very deep. 4 (Engus wilson)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शैशव के अनुभव लेखकीय जीवन में बहुत महत्व रखते हैं और किसी लेखक के कृतित्व को जांचने-परखने का एक स्रोत या आधार या मानदण्ड यह भी हो सकता है ।

प्रेमचन्द का शैशवकालीन जीवन :

प्रेमचन्दजी का बचपन अनेक अभावों से ग्रस्त रहा है , इस तथ्य को पूर्ववर्ती पृष्ठों में भी रेखांकित किया जा

चुका है, तथापि इस अध्याय का मुख्य मुद्दा ही यह है, अतः यहाँ प्रेमचन्दजी के बचपन पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

प्रेमचन्दजी का बचपन आर्थिक अभावों से ग्रस्त रहा। उनके शैशवकाल पर और जो दूसरे प्रभाव पड़े उनको समझने के लिए उनकी वंशावली पर एक दृष्टिपात करना उपयुक्त रहेगा। करीब दो सौ साल पहले एक लाला टीकाराम हुए। वे लमही के पास ऐरे गाँव में रहते थे। बनारस से आजमगढ़ की ओर जो सड़क जाती है, उस पर बनारस से करीब चार मील की दूरी पर लमही गाँव है। लाला टीकाराम की तीसरी पुश्त में मुंशी गुरसहायलाल हुए, जो पटवारी होकर ऐरे से लमही आये।[5]

मुंशी गुरसहायलाल लमही पटवारी होकर आये। 'पटवारी में अगर अक्ल हुई तो उसे गाँव का राजा ही समझना चाहिए एक तरह से — जैसे चाहे स्याह-सफेद करे, कोई उसका हाथ पकड़नेवाला नहीं।' अतः मुंशी गुरसहायलाल ने भी धीरे-धीरे करके साठ बीघा की आराजी कर ली। मुंशीजी अपने साथ अपने एक भतीजे हरनारायण को भी लाये थे। मुंशीजी के चार बेटे हुए — कौलेश्वर लाल, महाबीरलाल, अजायबलाल और उदितनारायणलाल। पटवारीगिरी से मुंशीजी ने खूब कमाया। अतः रुपये-पैसे की कमी नहीं थी। अतः मुंशीजी को पीने की लत लग जाती है। नशे की हालत में वे अपनी बीबी की खूब मरम्मत कर दिया करते थे और उसके कारण घर में आये दिन कलह का वातावरण बना रहता था। मुंशीजी के बेटों में महाबीरलाल लम्बे-तगड़े, हट्टे-कट्टे और हेकड़ जवान थे। माँ की पिटाई के समय वे ही मुंशीजी को घसीटते हुए बाहर ले जाते थे। मुंशीजी भी महाबीर को बहुत मानते थे और इसीलिए अपनी आठ बीघा ज़मीन उन्होंने उनके नाम करवा दी थी। मुंशीजी चाहते थे कि उनके दूसरे बेटे पढ़ें और नौकरी करें और महाबीर खेती में रहें, क्योंकि जोरू

और जमीन के बारे में उन दिनों मशहूर था कि ये दोनों उस आदमी के पास रहती हैं जिसका शरीर ताकतवर और लाठी xxxx मजबूत होती है । [7]

अतः महावीर खेती में लग गये । कौशिवर , अजायब और xx उदितनारायण ने इतना पढ़ लिया कि नौकरी कर सके । उस जमाने में सरकारी नौकरी पाने के लिए थोड़ी-सी उर्दू-फारसी , थोड़ी-सी अंग्रेजी और थोड़ा-सा हिसाब-किताब जानना जरूरी था । अतः सर्वप्रथम कौशिवर डाकमुंशी हुए । उन्होंने कुछ दिनों बाद अजायब को भी डाकमुंशी बना दिया और अजायब ने उदितनारायण को । इस प्रकार तीनों भाई डाकमुंशी बन गये । 8

मुंशी गुरसहायलाल पटवारी अपने साथ अपने भतीजे हरनरायन-लाल को लाये थे । उनकी यह भलमनसाई ही उनके परिवार को ले डूबी । हरनरायन घुट-पालाक था । उसने महावीर को यह पट्टी पढ़ाई कि वह यदि वह साठ बीघा जमीन उसके नाम कर दे तो उसे अपने पिता की पटवारीगिरी मिल सकती है । उन दिनों कुछ ऐसा कायदा था कि बेटा यदि पढ़ा-लिखा हो तो उसे बाप की पटवारी की गद्दी मिल सकती थी । पर उसके लिए बेटा xxxx पटवारियन पास होना चाहिए । महावीर थोड़ा-बहुत पढ़े थे , पर पटवारियन पास करना उनके बूते से बाहर था । अतः एक तरफ वे हरनरायन के झांसे में आ गये और घर में किसीको पूछे-ताछे बिना आराजी की साठ बीघा जमीन से इस्तीफा दे आये और दूसरी तरफ पटवारगिरी भी नहीं मिली । महावीर की बुद्धि भी उनके शरीर की तरह मोटी थी । अब इन चारों भाइयों के बीच केवल छः बीघा जमीन बची जो गुरसहायलालने अलग से महावीर के बेटे बल-देवलाल के नाम कर रखी थी । अतः इस प्रकार मुंशी xxxxx गुरसहायलाल ने अपनी कूट-बुद्धि से xxxxxxx जो कमाया था,

वह महावीर की मोटी बुद्धि ने गंवा दिया और [illegible] परिवार फिर जहाँ का तहाँ आ गया । [9]

ऊपर बताया जा चुका है कि कौशेश्वर, अजायब और उदित तीनों भाई डाकखाने में लग गए थे । यह महकमा दूसरों की तुलना में साफ-सुथरा था । पर इसमें इज्जत काफी होती थी । आँख-कान जो भी समझिये, डाकमुंशी गाँव का एक खास आदमी माना जाता था । उस जमाने में जब सारे गाँव में दो ही चार आदमी अपने दस्तखत कर सकते हों, डाकमुंशी का काम डाकमुंशी का काम दूसरों की [illegible] चिट्ठियों को पढ़ना और लिखना भी हो जाता था, अलबत्ता भलमनसाहत के तहत और उसके एवज़ में गाँव के लोग थोड़ी बहुत जौ-मटर, साग-सब्जी, रस-गुड़ भी पहुँचा दिया करते थे । [10]

मुंशी अजायबलाल के बड़े भाई कौशेश्वरलाल का निधन जवानी में ही हो गया । उनकी विधवा स्त्री की जिम्मेदारी भी मुंशी अजायबलाल पर आ पड़ी । इस संदर्भ में अमृतराय की टिप्पणी है — " लेकिन फिर उनके साथ भी वही हुआ जो सब या कुछ हमारे समाज में प्रायः हर विधवा युवती के साथ होता है । रिश्ते के एक भतीजे को लेकर उनकी बदनामी हुई, महावीरलाल की पत्नी ने अभूतपूर्व मनोयोग से अपनी जिठानी के चारित्रिक स्खलन का अनुसंधान और प्रचार किया — यहाँ तक कि बेचारी गाँव छोड़कर बुलार चली गयीं और वहाँ दो-एक सेठों की लड़कियों को पढ़ाकर (थोड़ी-बहुत कैथी वह जानती थीं) अपनी ज़िन्दगी के दिन काटने लगीं । " [11]

कौशेश्वरलाल का बेटा मोतीलाल भी युवावस्था में ही काल-कवलित हो गया । उसके एक बेटा अब और तीन लड़कियाँ थीं । उसकी विधवा को मुंशीजी बरसों पाँच रुपया महीना देते

रहे । उन दिनों पगार भी बहुत कम होती थी । मुंशीजी दस रुपये पर लगे थे , चालीस तक पहुंचते-पहुंचते रिटायर हो गए थे । इसी आमदनी में से वे अपने चाचा ईश्वरीलाल की विधवा को भी आजीवन दो रुपया महीना देते रहे । [12]

छोटाभाई उदितनारायण भी डाकमुंशी था , पर गबन के जुर्म में पकड़े गये । उनको सात साल की सज़ा हो गई । सरकारी रकम एक हज़ार रुपया बड़ी मुश्किलों से जमा करवाया गया । इनके बाल-बच्चों की परवरिश में भी मुंशीजी सबसे आगे रहे । उदितनारायण का बड़ा लड़का आवारा निकल गया । घर से भाग गया और सदा के लिए गायब हो गया । एक लड़की की शादी कर चुके थे । दूसरी की शादी मुंशीजी ने की । उदितनारायण सज़ा काटकर घर आयेतो पर मारे शर्म के किसीसे आँखें नहीं मिला सकते थे और अन्ततः एक दिन ऐसे गायब हो गये कि फिर कभी नहीं दिखे । [13]

अतः उदितनारायण के बाल-बच्चों की देख-रेख भी मुंशी अजायबलाल ने की और इन सब कारणों से परिवार सदा आर्थिक तंगदस्ती में रहा । इनके संदर्भ में लिखा गया है — " उनके व्यक्तित्व में असाधारण कुछ भी न था , बस इतना था कि आदमी भले थे , छल-कपट से दूर रहते थे । उनके माँ-बाप के बारे में जो कुछ पता चलता है उससे मालूम होता है कि उनकी प्रकृति में अपने पिता से अधिक अपनी माँ का अंश था जो कि एक शांत-साध्वी स्त्री थीं । उन्होंने कभी अपनी पत्नी के साथ वैसा दुर्व्यवहार नहीं किया जैसा उनके पिता अपनी पत्नी के साथ आये दिन किया करते थे । मामूली पढ़े-लिखे आदमी थे । गीता और शास्त्र भी देखे थे । पर धार्मिक अनुष्ठानों में उन्हें ज़्यादा विश्वास न था । कहते थे , उनमें ढोंग ज़्यादा है , सत्य कम । धर्म का मतलब वह सदाचार समझते थे , जिसे उन्होंने शक्ति भर अपने

जीवन में बरता। कभी किसीसे झगड़े नहीं, हाँ छोटा-मोटा भला बहुतों का किया। अपने नातेदारों में जगदम्बा के पिता ब्रज-किशोरलाल और बिन्देसरी के पिता रामपाललाल को अपनी कोशिश से चिट्ठीरसाँ बनवाया और ज़रूरत पड़ने पर लोगों को रुपये-पैसे देने में भी अपनी औक़ात भर कंजूसी नहीं की। हमेशा नज़र नीची करके चले। गाँव की बहू-बेटियों को अपनी बहू-बेटी समझा। कभी किसी झगड़े में अगर लोगों ने उनको पंच बनाया तो बिना इसका या उसका मुँह देखे अपनी बेलौस राय दी और वैसा ही आदर भी उनको अपने समाज में मिला।" [14]

मुंशी अजायबलाल की पत्नी का नाम (अर्थात् प्रेमचन्द की माँ का नाम) आनंदी था। जैसा नाम वैसे गुण। देखने में जितनी सुंदर, स्वभाव की उतनी ही कोमल। "सुंदर इतनी कि शायद इतनी सुंदर स्त्री परिवार में फिर कभी नहीं आयी — खूब गोरी, मंझोला कद, भरा हुआ छरहरा शरीर, आँखें बड़ी नहीं पर सुंदर, उठी हुई सुडौल नाक, लम्बे-लम्बे बाल, मीठी आवाज़। काशी विश्वविद्यालय के पास एक गाँव है करौनी, वहीं की लड़की थीं। ... उन्हें कभी किसीसे झगड़ा करते नहीं देखा गया और न वह दूसरी औरतों की तरह इधर की बात उधर लगाने में या टोल-पड़ोसवालों की निन्दा में रस लेती थीं। शीलवती, घरेलू स्त्री थीं, अपने पति के समान ही सदा हर किसीकी सहायता के लिए तत्पर। खुद भी मामूली ही पढ़ी-लिखी थीं, बस थोड़ी-सी कैथी, पर उतनी उन्होंने अपनी भतीज-बहू को भी सिखला दी। ... घर के कामकाज में वह ज़रूर यकता थीं। खाना बहुत अच्छा पकाती थीं और सीने-पिरोने में भी बेजोड़ थीं। उनके हाथ की बखिया में जो सफाई थी, वह तो फिर देखी ही नहीं गयी।" [15]

आनंदीजी को एक ही बात का दुःख था । उनके बच्चे नहीं जीते थे । तब वहाँ की औरतों ने कहना शुरू किया कि उनका प्रसव के लिए मैके जाना ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ भूत लग जाते हैं । इसे चाहे संयोग ही समझ लिया जाए, किन्तु उसके बाद जो लड़की पैदा हुई, वह जीवित रही । उसका नाम सुग्गी रखा गया । उसके छः-सात साल बाद सावन बदी 10, संवत् 1937, शनिवार 31 जुलाई को, वहीं लमही के पुश्तैनी मकान में प्रेमचन्द का जन्म हुआ । प्रेमचन्द तो उनका बाद में धारण किया हुआ नाम ही है । मूल नाम तो उनका धनपतराय था । उनके ताऊ उनको नवाब कहते थे ।[16]

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है । जिस प्रेमचन्द ने आजीवन समाज की मुर्दा रूढ़ियों से लोहा लिया था, वह स्वयं एक मुर्दा रूढ़ि की छाया में पैदा हुआ था । लड़के के जन्म का आनंद तो था ही, बस एक बात खटक रही थी — लड़का तेतर था, याने तीन लड़कियों पर हुआ था । ऐसे बालक के संदर्भ में लोगों का मानना था कि ऐसा बालक माँ-बाप के लिए भारी होता है ।[17]

नवाब में माँ के प्राण बसते थे । माँ को हमेशा यह डर बना रहता था कि उसके बेटे को कोई नज़र न लगा दे । बालक चंचल था । ऐसे बच्चे को "टोनहा"[18] कहते हैं । उन्हें जल्दी नज़र लगती है । अतः माँ हरदम झाड़-फूंक करवाती रहती थी । राई-नोन से नज़र उतरवाती रहतीं और "डिठौना" तो नवाब को पाँच-छः साल की उम्र तक लगाया जाता था ।[19]

बचपन के कुछ वर्ष माँ के प्यार की शीतल छाया में मधुरता से बीते । शरारत और चुहल उनकी घुट्टी में

मिली हुई थी । आये दिन कुछ-न-कुछ होता रहता था । एक दिन लड़ाई-लड़ाई खेलते हुए रग्घू नामक एक लड़के का कान काट डाला । माँ के पूछने पर बताया कि पता नहीं कैसे कट गया, मैं तो उसकी हजामत बना रहा था । खेतों में घुसकर ऊख तोड़ लाना, मटर उखाड़ लाना, ये तो रोज-रोज की बातें थीं । डांट-फटकार होती, पर एक-दो रोज के बाद फिर वही रंग-ढंग ।[20]

ढेला चलाने में नवाब मीर माने जाते थे । टिकोरे पेड़ में आते और उनकी ढेलमारी शुरू हो जाती थी । पेड़ का रखवाला चिल्लाता रहता और उनकी मंडली टिकोरे बिन-बटोरकर चम्पत हो जाती । अपनी मंडली में नवाब का निशाना मशहूर था । ऐसे ही गुल्ली-डण्डे के खेल में भी वे उस्ताद माने जाते थे । इमली के चियों तथा महुवे के कोइनों के खेल भी होते । कबड्डी की पाली जमती ।[21]

xxx प्रेमचन्दजी की बाल-स्मृतियों में "कज़ाकी" की स्मृति न मिटनेवाली स्मृतियों में है । "कज़ाकी" xxxxxx कहानी में उसका उल्लेख मिलता है — " मेरी बाल स्मृतियों में "कज़ाकी" एक न मिट ने वाला व्यक्ति है । आज चालीस साल गुजर गये, लेकिन कज़ाकी की मूर्ति अभी तक आँखों के सामने नाच रही है । ... कज़ाकी जाति का पासी था । बड़ा ही हँसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिंदा-दिल । रोजाना डाक का थैला लेकर आता । जब वह दौड़ता तो उसकी झनझनी झुनझुनी बजती । हर्षातिरेक में मैं भी दौड़ पड़ता और एक क्षण में कज़ाकी का कंधा मेरा सिंहासन बन जाता । वह स्थान मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ग था । स्वर्ग के वासियों को भी शायद वह आनंद न मिलता होगा जो मुझे कज़ाकी के विशाल कंधे पर मिलता था । संसार मेरी आँखों में तुच्छ होजाता और जब कज़ाकी मुझे कंधे पर लिए हुए दौड़ने लगता; तब तो ऐसा महसूस होता, मानों मैं हवा में घोड़े पर उड़ा जा रहा हूँ । "[22]

हवाई किले बनाना बचपन का एक विशेष गुण होता है। ये ही बचपन को सुन्दर और आकर्षक बनाते हैं। उसे हर्ष और उल्लास से मालामाल कर देते हैं। "राम-लीला" कहानी में वे इसी उल्लास की बात करते हैं : " एक ज़माना था, जब मुझे रामलीला में आनंद आता था। आनंद तो बहुत हल्का-सा शब्द है। वह आनंद उन्माद से कम न था। जब विमान निकलता है, तो रामचन्द्र के पीछे बैठकर महसूस होता है — मैं स्वर्ग में बैठा हूं।" [23]

प्रेमचन्द ने बचपन में आर्थिक अभाव देखे थे, किन्तु छः-सात साल तक अन्य बालसुलभ खेलों के कारण उन्हें व्याकुलता नहीं था। माँ और दादी के लाड़-प्यार में नवाब के दिन मज़ों से कट रहे थे कि इस नन्हे-से बच्चे के जीवन पर आसमान टूट पड़ा। नवाब जब आठ साल का था तब उसकी माँ का देहान्त हो गया। माँ की अकाल मृत्यु ने इस निरीह xxxxx बालक के मन पर वज्राघात किया। उसी दिन वह नवाब जिसे माँ पान के पत्ते की तरह फेरती थी, xxxxx डिठौना लगाकर घर से निकलने देती थी और आँचल में छिपाये फिरती थी, कभी सर्दी से कभी गर्मी से, कभी सिहानेवालों की डीठ से, देखते-देखते सयाना हो गया। अबउसके सर पर तपता हुआ नीला आकाश था, नीचे जलती हुई सूखी धरती थी, पैरों में जूते न थे, बदन पर साबित कपड़े न थे, इसलिए नहीं कि यकायक पैसे का टोटा पड़ गया, बल्कि इसलिए कि इन सब बातों की फ़िक्र रखने वाली माँ की आँखें मुंदxxxx गयी थीं।" [24]

मुंशी अजायबलाल डाकमुंशी थे। अतः उनके तबादले होते रहते थे। अतः प्रेमचन्द की प्राथमिक शिक्षा लमही में हुई। लमही से एक मील की दूरी पर एक गाँव था – लालपुर। यहाँ एक मौलवी साहब के यहाँ उनकी शिक्षा का प्रारंभ हुआ। मौलवी साहब पेशे से

टेलर थे , मगर मदरसा भी लगाते थे । इस प्रकार आठवें साल उनकी पढ़ाई शुरू हुई , ठीक वही पढ़ाई जिसका कायस्थ घरानों में चलन था , उर्दू-फ़ारसी । इस संदर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय अपनी टिप्पणी देते हैं :— " इट इज इन्टरेस्टिंग टु नोट देट द ग्रेटेस्ट आफ द हिन्दी नोवेलिस्ट्स डीड नोट बिगीन हीज एज्युकेशन विथ हिन्दी बट उर्दू एण्ड पर्शियन. " 25

उन्हीं दिनों की बात है । नवाब और हलधर [बलभद्र] ने मिलकर घर से एक रुपया उड़ाया । हलधर उनके ताऊ महावीरलाल का लड़का था । भुट्टे में सुपारी फंस जाने से नासूर हुआ और जवानी में ही मर गये । 26 यह हलधर और नवाब साथ-साथ मौलवी साहब के यहाँ पढ़ने जाते थे । रुपये की चोरी के बाद उन्होंने कई मंसूबे बाँधे थे । उन दिनों पाँच आने सेर अच्छी मिठाई मिल जाती थी , पर ये इस रुपये को कुछ सहेजकर रखना चाहते थे , ताकि कई दिनों तक मौज कर सकें । अतः एक खटकिन से दो पैसे के अमरूद लेते हैं । रुपया देखकर जब खटकिन कुछ शंका व्यक्त करती है , तब ये लोग कहते हैं कि मौलवी साहब की फीस के लिए चाचाजी ने रुपया दिया था । इस संदर्भ में बाद में प्रेमचन्दजी की टिप्पणी देखिये — " ज्यादा नहीं तो दो-तीन किताबें पढ़ ही चुके थे । विद्या का कुछ-कुछ असर हो चला था । " 27

अपने एक साथी से जब पता चलता है कि उनकी चोरी पकड़ी गई है और चाचाजी हलधर को मारते-मारते ले गये हैं । नवाब की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है । देखिये उस स्थिति का वर्णन — " वही हुआ जिसका मुझे शक हो रहा था । पैर मन-मन भर के हो गये । घर की ओर एक-एक कदम चलना मुश्किल हो गया । देवी-देवताओं के जितने नाम याद थे , सभी की मानता मानी — किसीको लड्डू× लड्डू , किसीको पेड़े ,

किसीको बताशे । गाँव के पास पहुँचा तो गाँव के डीह का सुमिरन किया क्योंकि अपने इलाके में डीह की ही इच्छा सर्वप्रधान होती है ।" 28

उन्हीं दिनों का स्मरण करते हुए नवाब ने संकेत दिया है कि उनके पिता को शाम के समय दारू पीने की आदत थी — "संध्या समय शीशे के गिलास में एक बोतल में से कुछ उंडेल-उंडेल कर पीते थे । शायद यह किसी नुस्खेकार हकीम की बतायी हुई दवा थी । दवाएं सब बतानेवाली और कड़वी होती हैं । यह दवा भी बुरी ही थी, पर पिताजी न मालूम जाने क्यों इस दवा को खूब मज़ा ले-लेकर पीते थे । हम जो दवा पीते हैं तो आँखें बंद करके एक ही घूंट में गटक जाते हैं, पर शायद इस दवा का असर धीरे-धीरे पीने में होता हो । पिताजी के पास गाँव के दो-तीन और और कभी-कभी चार-पांच और रोगी भी जमा हो जाते, और घण्टों दवा पीते रहते थे ।" 29

प्रेमचन्दजी के बाल्यकालीन जीवन में आर्थिक अभाव और परिवार की दरिद्रता के संकेत जरूर मिलते हैं, फिर भी माँ और दादी के प्रेम के कारण यह जीवन भरा-पूरा-सा लगता है । नवाब के जीवन की त्रासदी तो माँ की मृत्यु के बाद शुरू होती है । माँ की मृत्यु के दो साल बाद उनके पिता ने दूसरा ब्याह किया । नवाब को लमही छोड़कर सौतेली माँ के साथ गोरखपुर जाना पड़ा । सरकारी नौकरी के कारण अजायबलाल को जगह-जगह जाना पड़ता था, किन्तु इनमें सबसे अधिक का ठहराव गोरखपुर का था । xxxxx यहाँ के मिशन हाईस्कूल से उसने आठवीं का इम्तहान पास किया । सौतेली माँ के त्रास के कारण नवाब का ध्यान दूसरी बातों की ओर चला गया । उर्दू उपन्यास पढ़ना और दोस्तों के साथ अधिक से अधिक बिताना नवाब का नित्यक्रम हो गया । डा. बंदोपाध्याय ने इन दिनों के

संदर्भ में लिखा है — " ही टुक टु स्मोकिंग एण्ड एट द टेण्डर एज आफ थर्टीन हैड लर्न्ट टु थिंक च्वीपीश हैन्डल्स आर द सिम्पुल एट दैट एज. " 30

इन्हीं दिनों में नवाब दोस्तों के साथ छिप-छिपकर हुक्का पीने लगे थे । फिर था — "तिलस्मे-होशरूबा" पढ़ना उन दिनों के बच्चों में एक "फैशन" था । नवाब ने उसके 17 भाग पढ़ डाले । मिर्जा रुसवा का " उमराव-जान-अदा" तथा मौलाना सज्जाद हुसैन की हास्यपूर्ण रचनाओं को भी नवाब ने उन्हीं दिनों में पढ़ा था । घर के कलहपूर्ण वातावरण के कारण नवाब पढ़ाकू हो गया । डा. बंदोपाध्याय ने नवाब के उन दिनों के पठन-पाठन के संदर्भ में प्रेमचन्द से ही संदर्भ लेते हुए लिखा है —

"आई वाज धेन अबाउट 13. आई डिडन्ट डिडन्ट नो हिन्दी एटोल. आई डेवलोप्ड अ ग्रेट पैशन धेन, टु रीड उर्दू नोवेल्स. मौलाना शरार , रतननाथ सरशार , मिर्जा रुसवा एण्ड मौलवी मोहम्मद अली आफ हरदोई वेर एट द टाईम द मोस्ट पोप्युलर नोवेलिस्ट्स. व्हेनएवर आई हैड एन अपोर्च्युनिटी टु रीड देयर नोवेल्स , आई फरगोट आल अबाउट स्कूल एण्ड कुड नाट रेस्ट अन्टिल आई हैड फिनिस्ड द नोवेल आई हैड लेड माय हैण्ड्स आन. इन दोज डेज रेनोल्ड्स नोवेल्स वेर वेरी पोप्युलर. उर्दू ट्रान्सलेशन्स आफ हिज नोवेल्स वेर बीन ब्राउट आउट देन. आई आल्सो रैड हिज नोवेल्स. इन टु आर थ्री इयर्स आई मस्ट हैव रैड सम हण्ड्रेड्स आफ देम. " 31

लगभग तेरह साल की उम्र में नवाब ने एक व्यंग्यात्मक रचना लिखी थी । उनकी सौतेली माँ के भाईसाहब एक छोटी जाति की औरत के इश्क में फंस गए थे । इसी सबब उनकी बहुत बुरी तरह से पिटाई हुई थी । नवाब ये सब लिखकर मामू के सिरहाने रख देते हैं ।

मामू उसे क्या डाँटते हैं, पर उसका ऐसा असर हुआ होता है कि मामू अपना बोरिया-बिस्तर उठाकर चम्पत हो जाते हैं। पर नवाब को एक नया किमिया हाथ लग जाता है। इस संदर्भ में अमृतराय "कलम के सिपाही" में लिखते हैं —

" नवाब तब तक शरीर से दुर्बल थे और अब शायद पहली बार उन्हें अपने भीतर की इस नयी शक्ति की चेतना हुई जो मारपीट कर सकने से कहीं ज़्यादा भयंकर थी। जो काम लाठी-डण्डे से नहीं हो सकता वह काम यह क़लम कर सकता है। मैं कमज़ोर हूँ तो क्या, यह एक बड़ा हथियार मुझे मिल गया। अब मुझे कोई सताकर तो देखे मैं उसकी कैसी मिट्टी पलीद करता हूँ। ऐसी मार मारूँगा कि पानी भी माँगते नहीं बनेगा। ... यह नवाब के साहित्यिक जीवन का पहला पाठ था, जिसे वह कभी नहीं भूला। और न शायद एक बार मामू साहब की छीछालेदर करने से उसका जी भरा क्योंकि चालीस बरस बाद "गोदान" की सिलिया और मातादीन के रूप में चम्पा और मामू साहब फिर जी उठे।"[32]

अजायबलाल का तबादला जब गोरखपुर से जमनिया हुआ तो नवाब को फिर लमही आना पड़ा। बनारस के क्वीन्स कालेज में उन्होंने दाखिला लिया। तब वह नौवीं में पढ़ते थे। उनकी स्कूल फ़ीस माफ़ हो गयी थी। पिताजी से उन्हें पाँच रुपये मिलते थे। किन्तु उन पाँच रुपयों में खर्च चलाना मुश्किल था, अतः उन्होंने बांसफाटक के पास बनारस में ही एक बच्चे को ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया। लमही से नवाब चबेना लेकर सवेरे निकल पड़ते। दिनभर स्कूल में पढ़ते। शाम को उस बच्चे को पढ़ाते हुए फिर लमही पैदल जाते। अतः रात को करीब आठ बजे घर पहुँचते। फिर रात को मिट्टी के तेल के दीये के सामने बैठकर देर रात तक पढ़ते। इस प्रकार बड़ा संघर्षपूर्ण जीवन था उनका उन दिनों जब वह पन्द्रह

साल के थे ।[33]

इस पर एक आघात और लगा । नानाजी के कहने पर (यह नानाजी यानी उनकी सौतेली माँ के पिताजी) नवाब की शादी तय हो गयी । नवाब के ससुर बस्ती जिले के एकडापुर गाँव के जमींदार थे । नवाब को बताया गया था लड़की बहुत अच्छी है । तब तो नवाब भी बहुत खुश थे । अपनी शादी के मण्डप के लिए बाँस काटने भी खुद गये थे । पर शादी के बाद जब सूरत देखी तो खून सूख गया । इस संदर्भ में "कलम का सिपाही" में यह टिप्पणी दी गई है —

" नाना साहब ने पन्द्रह साल के इस खूबसूरत नवाब के लिए ऐसी उम्र में ज़्यादा , काली , भद्दी , थुलथुल , चेचक , अफ़ीम खानेवाली , मचककर चलनेवाली , औरत ही क्यों चुनी , यह रहस्य उनके साथ चला गया । लेकिन इसमें शक नहीं कि जिस-जिसने देखा उसके मुँह से एक सर्द आह निकल गयी । कहाँ नवाब , कहाँ यह औरत का कार्टून । यहाँ तक कि मुंशी अजायबलाल से भी नहीं रहा गया और उन्होंने हिम्मत बटोरकर अपनी पत्नी से कह दिया — लालाजी ने मेरे लड़के को कुएँ में ढकेल दिया । मेरा गुलाब-सा लड़का और उसकी यह बीबी । मैं तो उसकी दूसरी शादी करूँगा । पत्नी ने कहा — देखा जायगा । " [34]

इस अनमेल विवाह का दुःख नवाब को हमेशा रहा । उनके पिताजी को भी शायद इसका सदमा पहुँचा । " बुढ़ौती में यह एक ज़बर्दस्त धक्का उनको लगा और कुछ अजब नहीं उसने उनके अंत को और पास ला दिया हो क्योंकि वह नवाब की शादी के डेढ़ बरस के भीतर ही , कई महीने की बीमारी के बाद , इस दुनिया से

छप्पन बरस की अवस्था में सिधार गये , जबकि उनके पिता छिहत्तर बरस की आयु पाकर मरे थे और उनकी माँ भी अभी केवल चार-पाँच बरस पहले मरी थीं । " 35

इस अनमेल विवाह का प्रेमचन्द के जीवन पर बड़ा गहरा असर पड़ा है , जिसे हम प्रेमचन्द की अनेक कहानियों तथा उपन्यासों में देख सकते हैं । पिताजी की मृत्यु के उपरांत परिवार की जिम्मेदारी भी उन पर आ गयी । पत्नी , सौतेली माँ , उसके दो पुत्र — गुलाब और मेहताब — इन सबका बोझ उनके कंधों पर आ पड़ा । उस पर पत्नी कुरूप और मुखड़ । कर्कशा और झगड़ालू । कुछ वर्ष वह लमही रही और फिर मैके चली गयी । जिस वर्ष पिताजी की मृत्यु हुई उस वर्ष — सन् 1897 — उन्हें मैट्रिक की परीक्षा में बैठना था । उस साल नहीं बैठ सके । दूसरे साल बैठे । पर दूसरा डिविज़न मिला । अतः क्वीन्स कालेज में उन्हें मुआफ़ी नहीं मिली ।अतः उन्होंने हिन्दू कालेज में नसीब आजमाना चाहा । इसके लिए अंग्रेज आचार्य मि. रिचार्डसन के पास ठाकुर इन्द्रनारायण सिंह की चिट्ठी भी ले गये । आचार्य संतुष्ठ हुए । किन्तु "प्रवेश-परीक्षा " में अंग्रेजी के शिक्षक ने तो लिख दिया — संतोषजनक , परन्तु "रुखज्ञिया" के शिक्षक ने लिखा — " असंतोषजनक " । नवाब अपने गणित को ठीक करने में लग गये । साथ में ट्यूशन पढ़ाकर किसी तरह अपना और परिवार का निबाह भी करना था । कई बार लोगों से कर्ज लेना पड़ता । खैर , इन सब जमेलों में नवाब आगे नहीं बढ़ सके । 36 बी.ए. की डिग्री गालिबन 21 वर्ष बाद उन्होंने सन् 1919 में प्राप्त की । 37

इन दिनों के ~~आर्थिक~~ आर्थिक संघर्ष के संदर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय लिखते हैं — " मोर ऑफन दैट नौट

प्रेमचन्द हैड टु बोरो मनी एज इट इज नोट पोसिबल टु मैनेज इन टु रुपिज़ फोर द एण्टायर मन्थ. अनएबल टु रीपे द लोन इन टाईम ही हैड टु पुट अप विथ ग्रेट एगोनी एण्ड हैड टु अवोइड द नोटिस आफ द मनी-लैण्डरर्स फोर फीअर आफ पब्लिक इन्सल्ट. ही टुक थ्री इयर्स टु पे टु एण्ड हाफ रुपिज़ टु ए क्लोथ मर्चेन्ट फ्रोम हुम ही हैड बोट सम क्लोथ्स. ए गार्डनर हुम ही टौट हिन्दी, रिक्वर्ड द सहट आनास ही हैड बोरोड फ्रोम हीम आफ्टर फाईव इयर्स. डेब्ट्स समहाऊ समहाउ आर अदर कन्टीन्युड टु बी एन एण्डलेस प्रोब्लेम इन हिज लाईफ फोर मोस्ट आफ द पिरीअड पर्टिक्युलरली इन द लेटर इयर्स. द क्रेडिटर्स जुल्म एण्ड द बोरोवर्स हेल्पलेस प्लाईट कन्टीन्यु द रिकरण्ट थिम्स इन हिज नोवेल्स फोर विच ही हैड ए फर्स्ट हेण्ड एक्सपिरीयन्स इन हिज ओउन लाईफ."38

जैसा कि ऊपर कहा गया है आर्थिक विडम्बनाओं के के कारण प्रेमचन्दजी आगे पढ़ नहीं सके। वे एम.ए. करके लो की डिग्री हासिल करना चाहते थे और वकालत करना चाहते थे, किन्तु उनके इन सपनों पर तुषारापात हो गया। इस संदर्भ में डा. हंसराज रहबर अपनी टिप्पणी देते हुए उनके दर्द को भलीभाँति उकेरते हैं —

" लेकिन बाद में जब आजीवन ही कामनाएं प्रतिकूल होती ह रहीं और प्रेमचन्द बनकर भी प्रतिकूल परिस्थितियों में इच्छा के विरुद्ध काम करना पड़ा, तो मालूम हुआ कि अरमान खाक में मिलानेवाली शक्तियाँ बहुत ही बलवान हैं, जो समाज के पीछे छिपी हुई हैं; जिनसे लड़ना परमावश्यक है। पाँच सौ पृष्ठ का उपन्यास "गोदान" इन्हीं अरमानों के खाक में मिलने की कहानी है। होरी की असफलताएं प्रेमचन्द की अपनी असफलताएं

हैं । इस उपन्यास में उन्होंने एक वाक्य लिखा है , जो सारे उपन्यास का निचोड़ है , और अमरकान्त की इस मनोदशा को भली प्रकार व्यक्त करता है :— " जीवन की ट्रैजेडी और इसके सिवा क्या है कि आपकी आत्मा जो काम करना नहीं चाहती , वही आपको करना पड़े । " [39]

शैशवकालीन जीवनानुभवों का व्याप अनुमन किशोरावस्था तक मान सकते हैं । उपर्युक्त विवेचन में हमने देखा कि इस अवस्था में प्रेमचन्दजी कुछ निम्नलिखित कटु अनुभवों से गुजरते हैं — आर्थिक अभाव , माँ की मृत्यु , सौतेली माँ का दुर्व्यवहार , कच्ची उम्र में परिवार की जिम्मेदारी , अनमेल ब्याह की त्रासदी । स्नेहमयी माँ की मृत्यु के साथ ही मानो "नवाब" का नवाबपना" तो मर गया । सौतेली माँ के त्रास से उसे गुजरना पड़ा । अतः पिता के प्रति उनकी जो स्मृतियाँ हैं वे बहुत ही कटु-सी जान पड़ती हैं । यथा —

" आखिर क्या पड़ी थी मुंशी अजायबलाल को जो बेटी-बेटे के रहते हुए बुढ़ौती में जाकर दुबारा ब्याह किया ? सेहत भी आपकी माशा अल्ला थी , रोज़ गिलसिया भर दारू न चढ़ाते तो चलना-फिरना दूभर हो जाता , लेकिन शादी करने बाज़ न आये । ताज्जुब है अज़ीज़ों में किसीने समझाया भी नहीं कि भैया यह क्या करते हो , क्यों अपने गले की यह फाँसी मोल लेते हो । भगवान के दिये तुम्हारे दो बच्चे हैं , अब तुम्हें और क्या चाहिए ? राम का नाम लो और इस झगड़े से बाज़ आओ, इसमें सिवाय ख्वारी के और कुछ तुम्हें हाथ न लगेगा । न किसीने समझाया न खुद आपको अक्ल आयी । अभी छोकरा थी , ऐसी

भी क्या हवस कि उस पर इंसान [illegible] क़ाबू न रख सके, उम्र भी तो मुलाहिज़ा फ़रमाइए, पचास साल का आपका सिन है और आप चले हैं फिर ब्याह रचाने ! है कुछ इन्तहा इस अहमकपने की ! ज़रा कोई पूछ इनसे, आपसे तो दो बरस भी बीबी के बिना नहीं रहा गया और आप जाकर एक नयी बीबी ब्याह लाये, समाज ने ज़रा भी कनौतियाँ नहीं खड़ी कीं, लेकिन अगर किसी औरत ने ऐसी ही उम्र में पहुँचकर दुबारा शादी की होती तो आपका समाज उसे ज़िन्दा रहने देता ? इस उम्र की बात तो जाने दीजिए, आप तो भरी जवानी में बेवा लड़की की शादी नहीं करने देते। उसे संयम का पाठ पढ़ाते हैं। सारा संयम, सारा इन्द्रिय-निग्रह उसीके लिए है, आपके लिए कुछ नहीं है ? भूख बस आपको लगती है, औरत को भूख नहीं लगती ? आपसे तो उस बुढ़ौती में भी दो बरस नहीं रहा गया और जवान औरत सारी ज़िन्दगी अपनी पहाड़ जैसी जवानी लिए बैठी रहे। वह क्या काठ की बनी है, पत्थर की बनी है ! मगर ख़ैर, आपको किसीने ब्याह करने से रोका नहीं और आपने ब्याह किया। लेकिन हुआ [illegible] वही जो होना था। आप ख़ुद तो सिधार गये लेकिन मेरे पैर में सदा के लिए चक्की बाँध गये। सदा-सदा के लिए मैं खूँटे से बंध गया। क्या-क्या तमन्नाएँ थीं, घूमने की, फिरने की, दुनिया देखने की — सब धरी की धरी रह गयीं। अभी एक ही पैर में चक्की थी, दूसरा पैर आज़ाद था। लेकिन वह भी आपसे देखा न गया, दूसरे पैर की चक्की का भी इन्तज़ाम आप ख़ुद ही कर गये। बतलाइए, क्यों मैं पढ़ता था मैं, क्या जल्दी थी मेरी शादी की ? यह भी कोई शादी की उम्र है ? और शादी भी कैसी औरत से ! रूप-रंग, शिक्षा-संस्कार — हर चीज़ से कोरी। कोई उसके साथ निबाह करे तो भी कैसे। लड़ाका अलग से। ज़िन्दगी नरक हो गयी।"[40]

अब हमारा उपक्रम इन शैशवकालीन अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी के उपन्यासों पर एक दृष्टिपात करने का रहेगा।

वरदान :

जहाँ तक शैशवकालीन प्रभावों का संबंध है, वह एक तरफ जहाँ वैयक्तिक है, वहाँ दूसरी तरफ सामाजिक भी है। यह उपन्यास प्रथमतः प्रेमचन्दजी ने सन् 1905-6 में लिखा था। उस समय भारतीय उपनिवेश में स्वतंत्रता का आंदोलन जोर पकड़ रहा था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में देशभक्ति की भावना में उभार आ रहा था। अतः इस उपन्यास का मुख्य विषय है — देशभक्ति की भावना। सुवामा देवी माँ से वरदान माँगती है कि वह उसे एक ऐसा पुत्र प्रदान करे जो अपना समस्त जीवन देश-सेवा में अर्पित कर दे। आर्थिक अभावों में प्रेमचन्द जो करना चाह रहे थे, कर नहीं सकते थे। अतः अपने अन्तर्मन की पूर्ति हेतु वह प्रताप के चरित्र की सृष्टि करते हैं। प्रताप विरजन को चाहता है, परन्तु दरिद्रता के कारण वह उसे नहीं पा सकता। विरजन का ब्याह कमलाचरण नामक एक आवारा किस्म के लड़के से हो जाता है। यहाँ अनमेल ब्याह की बात एक दूसरे रूप में आती है। विरजन योग्य है, सुंदर और सुशील है। पर उसका विवाह कमलाचरण से होता है, जो उसके लिए सर्वथा अयोग्य है। कमलाचरण की आवारगी का यथार्थ वर्णन प्रेमचन्दजी ने किया है, क्योंकि मुंशी उदितनारायण लाल का लड़का जगतनारायण भी आवारा था, और इसी आवारगी में घर से भाग गया था, जो फिर कभी नहीं लौटा।[41] सुवामा और प्रताप की दरिद्रता के सटीक वर्णन के लिए भी उनके शैशवकालीन अनुभव कारगर हुए हैं। प्रताप के पिता मुंशी शालिग्राम एक भले आदमी थे। खूब उदार और

दानप्रिय । उसके कारण उन पर कर्ज़ हो गया । उसके बाद जब वे कुम्भ के मेले में मगर गये तो वहाँ से वापस लौटकर न आये । नवाब के चाचा उदित्त नारायण भी इसी तरह घर से गायब हो गये थे । [42] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास की कथा-संरचना पर नवाब के शैशवकालीन अनुभवों का काफ़ी प्रभाव है ।

प्रतिज्ञा :

इस उपन्यास का दूसरा नाम प्रेमा भी है । यह भी सन् 1906 में लिखा गया था । इस समय प्रेमचंद की आयु 26 वर्ष की थी । अतः बचपन के ताज़ा अनुभवों की गमक यहाँ भी महसूसी जा सकती है । उन दिनों स्वतंत्रता आंदोलन के समानान्तर समाज-सुधार के आंदोलन भी चल रहे थे । अतः प्रेमचन्द के बाल-मानस पर उनका भी काफ़ी प्रभाव दृष्टिगत होता है । उस समय के सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों में आर्य समाज प्रमुख था । यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि प्रेमचन्द पर प्रारंभ में आर्य समाज का काफ़ी प्रभाव परिलक्षित होता है । दो मुद्दे उस समय मुख्य थे — अछूतोद्धार और विधवाओं की दयनीय स्थिति । प्रस्तुत उपन्यास में विधवा-विवाह की समस्या को लिया गया है । विधवाओं की दयनीय स्थिति को प्रेमचन्द ने बहुत करीब से अपने परिवार में देखा है । प्रेमचन्द के ताऊ कौलेश्वर लाल की मृत्यु जवानी में ही हो गयी थी । महावीरलाल की पत्नी ने उनकी विधवा स्त्री पर कई तरह के लांछन लगाये थे , अतः आखिरकार वह गाँव छोड़कर चली गयी थीं । यह महावीर लाल नवाब के दूसरे ताऊ थे । कौलेश्वर लाल का लड़का मोतीलाल भी युवावस्था में ही एक साल का

पुत्र तथा तीन छोटी-छोटी लड़कियों को छोड़कर काल-कवलित हो गया था। [43] मुंशी अजायबलाल ही इन सबका पालन-पोषण करते थे। अतः विधवाओं के लिए कोमल भाव प्रेमचन्द में बचपन से ही थे। प्रस्तुत उपन्यास के अमृत और दाननाथ मित्र है। वे दोनों प्रेमा को प्यार करते हैं। प्रेमा अमृत की साली है। अमृत की पत्नी का देहान्त हो गया है और उसके श्वसुर बाबू बद्रीप्रसाद चाहते हैं कि प्रेमा का विवाह अमृत से हो जाए। लेकिन अमृतराय एक दिन एक सभा में जाता है। वहाँ विधवा-विवाह के बारे में सुनकर वह अपना इरादा बदल देता है, क्योंकि वह अपना जीवन विधवाओं की सेवा में अर्पित करना चाहता है। निस्सहाय और दुखिया विधवा स्त्रियों को प्रश्रय देने हेतु वह एक आश्रम भी खोलना है। अतः प्रेमा का विवाह दाननाथ से हो जाता है। प्रेमा की एक सहेली है — पूर्णा। उसका पति वसंतकुमार भंग पीकर गंगा-स्नान के लिए जाता है और भंग के नशे के कारण गंगा में डूब जाता है। अतः पूर्णा बद्रीप्रसाद के यहाँ रहने लगती है। बद्रीप्रसाद का लड़का कमलाप्रसाद दुराचारी और नीच प्रकृति का है। "वरदान" के कमलाचरण की भाँति वह भी बड़े बाप का बिगड़ा हुआ बेटा है। वह पूर्णा पर बलात्कार करता है। अतः पूर्णा अमृतराय के आश्रम में चली जाती है। कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा शीलवान और गुणवान है। यहाँ भी अनमेल विवाह की बात लेखक ने प्रकारान्तर से छेड़ी है।

सेवासदन :

"सेवासदन" प्रेमचन्द का एक बहुआयामी उपन्यास है। इस प्रकार का प्रेमचन्दजी का प्रथम उपन्यास है। यहाँ भी प्रेमचन्द स्त्रियों की दीन-हीन स्थिति को केन्द्र में लेकर चले हैं। सुमन के पिता दारोगा कृष्णचन्द्र एक ईमानदार पुलिस-अफसर है, पर

बेटी सुमन के दहेज के लिए रिश्वत लेते हुए पकड़े जाते हैं। कुछ इस प्रकार की घटना प्रेमचन्द के परिवार में भी घटित हुई थी। प्रेमचन्द के चाचा उदितनारायण भी ग़बन के जुर्म में पकड़े गए थे और उन्हें भी सात साल की सज़ा हो गयी थी।[44] सज़ा काटने के बाद उदित-नारायण घर आये पर किसीसे आँख नहीं मिला सकते थे। बाद में कहीं गुम हुए तो वापस नहीं लौटे। प्रस्तुत उपन्यास के कृष्णचन्द्र भी जेल से लौटने के बाद विक्षिप्त-से हो जाते हैं और बात-बात पर लोगों से लड़ पड़ते हैं और गाँव की औरतों से अश्लील मज़ाक करते हैं। शान्ता की बारात लौट जाने पर उन्हें मालूम होता है कि उनकी बड़ी लड़की वेश्या बन गई है, तब वह गंगा में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं।

सुमन की स्थिति के पीछे भी दहेज की समस्या है। दहेज की समस्या क्या होती है यह प्रेमचन्द ने बहुत करीब से देखा है। प्रेमचन्द के परिवार की आर्थिक बदहाली में यह भी एक कारक है। मुंशी अजायबलाल को अपने परिवार की कई लड़कियों की शादी करनी पड़ी है। इन खर्चों के कारण वह हमेशा तंगदस्ती में ही रहे। कृष्णचन्द्र को जेल हो जाने के कारण सुमन की माँ उसकी शादी गजाधर से कर देती है। सुमन और गजाधर की जोड़ी को बेमेल ही कह सकते हैं। प्रेमचन्द अनमेल विवाह की समस्या कई बार अलग-अलग ढंग से उठाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का जमींदार महन्त रामदास धर्म के नाम पर अनेक कुकर्म करता है। बस प्रेमचन्दजी अपने प्रत्येक उपन्यास में तथाकथित धर्म के ठेकेदारों की पोल-पट्टी खोलते हैं। यह संस्कार भी उनको अपने पिता से मिले थे। धर्म के बाह्य अनुष्ठानों में मुंशी अजायबलाल का विश्वास नहीं था।[45]

प्रस्तुत उपन्यास में म्युनिसिपल चुनाव तथा हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या को भी उठाया है, यह उनके बनारस-जीवन के अनुभवों पर आधारित है। प्रेमचन्द एक वस्तुनिष्ठ कलाकार है। उन्होंने "सेवासदन" के रचनाकाल तक, अपनी शैशवावस्था तथा किशोरावस्था में जो अनुभव किया, रतननाथ सरशार आदि की जो वस्तुपरक कथाशैली को देखा उसे यहाँ चित्रित किया है। सुमन के पतन के पीछे केवल उसकी गरीबी ही जिम्मेदार नहीं है, परंतु जब वह देखती है कि धर्म भी भोली वेश्या के सामने घुटने टेकता है, तब उसके मन में विकार आता है। डा॰ हंसराज रहबर इस संदर्भ में लिखते हैं —

" जब रामनवमी के उपलक्ष पर काशी के प्रसिद्ध मंदिर में भोली के भजन हुए तो सुमन घृणा छोड़कर उससे मेल-जोल बढ़ाने लगी। पति ने एतराज किया तो उसने भोली के मंदिर में जाने की बात कही। इस तर्क के जवाब में गजाधर ने कहा — " आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा है। लम्बी-लम्बी जटाएं, लम्बे-लम्बे तिलक और लम्बी-लम्बी दाढ़ियां तो महज़ पाखण्ड है और लोगों को धोखा देने के लिए है। " ... सुमन जब एक गृहस्थ औरत है तो उसे कोई आश्रय तक नहीं देता; लेकिन जब वह दालमण्डी में बैठती है तो समाज के रंगे सियार अबुल वफ़ा, सेठ चिम्मनलाल और पंडित दीनानाथ उसके तलवे सहलाते हैं। " 46

यह सारा वस्तुनिष्ठ चित्रण प्रेमचन्द के शैशवकालीन संस्कारों का परिणाम है। बचपन के दिनों का नवाब का एक चहेता "कज़ाकी" था। "शाम रखते ही वह हम लोगों को लेकर किसी मैदान में निकल जाता, कभी हमारे साथ खेलता, कभी बिरहे सुनाता और कभी कहानियाँ सुनाता। उसे चोरी और डाके, मारपीट, भूत-प्रेत की सैकड़ों कहानियाँ याद थीं। उसकी कहानियों के चोर और

डाकू सच्चे योद्धा होते थे जो अमीरों को लूटकर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे । " 47

प्रेमाश्रम :

यह उपन्यास सन् 1918-19 में लिखा गया और सन् 1922 में प्रकाशित होता है ।[48] प्रेमचन्द का यह पहला बड़ा उपन्यास है । उसमें उनकी चौमुखी व्यापक वस्तुनिष्ठ वस्तुनिष्ठ दृष्टि का परिचय होता है । प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था । रूस की क्रान्ति सफल हुई थी और उसके कारण विश्व के इतिहास में पहली बार दुनिया के एक बड़े भू-भाग पर मजदूरों-किसानों का राज्य स्थापित हुआ था । प्रेमचन्द गांव के हैं । मजदूरों-किसानों की गरीबी और दुख-दर्द को उन्होंने बचपन से ही बहुत करीब से देखा-जाना है । अतः उनकी चेतना हमेशा उनके साथ रही है ।

यह उपन्यास उन्होंने किसान-समस्या को लेकर लिखा है । जमींदारों और उनके कारिन्दों , पुलिस के अफसरों तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों की लूट-खसोट में भारत के सामान्य गरीब किसान किस तरह पिस रहे थे उसका यथार्थ चित्रण लेखक ने इसमें किया है । प्रेमचन्द किसानों में ही उत्पन्न हुए थे । अतः उन्हें देश की पीड़ित-शोषित शोषित - दलित गरीब जनता से सच्ची हमदर्दी थी । अपने शैशवकालीन किशोरावस्था के अनुभवों से उन्होंने उनकी यथार्थ दशा को देखा था । अतः अब वैश्विक परिस्थिति में उसकी सही पड़ताल वह कर सकते थे । प्रेमशंकर इस उपन्यास का एक आदर्श पात्र है । वस्तुतः प्रेमशंकर के विचार प्रेमचन्द के ही विचार हैं । उपन्यास में एक स्थान पर प्रेमशंकर के चिन्तन को बताया गया है — " प्रेमशंकर मन में कहा करते थे कि मैं किसानों को शायद ही कोई ऐसी बात बता सकता हूं , जिसका उन्हें ज्ञान

न हो । मेहनती तो उनसे अधिक दुनिया भर में कोई न होगा । किफायत-संयम और गृहस्थ के बारे में भी वे सबकुछ जानते हैं । उनकी दरिद्रता की जिम्मेदारी उन पर नहीं, बल्कि इन हालात पर है जिनके तहत उन्हें अपना जीवन बिताना पड़ता है । वह परिस्थितियाँ क्या हैं ? आपस की फूट, स्वार्थ और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था जो उन्हें मजबूती से पकड़े हुए है । लेकिन जरा ज्यादा विचार करने पर मालूम हो जाएगा — यह तीनों टहनियाँ एक ही बड़ी टहनी से निकली हैं और वह टहनी वह व्यवस्था है, जो किसानों के खून पर कायम है । "49

मनोहर, बलराज, कादिर तथा गाँव के अन्य गरीब लोगों, मजदूरों और किसानों के जीवन में जो गरीबी है, वह तो प्रेमचन्द की देखी-भाली है । अतः शोषकों के प्रति विद्रोह-भाव भी उसका ही एक परिणाम है ।

जमींदार ज्ञानशंकर की नीचता-धूर्तता और स्वार्थान्धता के प्रतीक तो उनके घर-परिवार में ही मौजूद थे । पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरूपित किया जा चुका है कि नवाब के दादाजी मुंशी गुरसहाय लाल अपने साथ अपने भतीजे हरनारायण लाल को भी लाये थे । मुंशी गुरसहायलाल ने पटवारगिरी में साठ बीघा जमीन कर ली थी । यह जमीन उन्होंने अपने बेटे महावीरलाल के नाम की थी, क्योंकि मुंशीजी सोचते थे कि बाकी बेटे तो सरकारी नौकरी करेंगे । महावीरलाल मजबूत और पहलवान स्वरूप के थे, अतः "जमीन-जोरू" वाले न्याय से उन्होंने महावीर के पास जमीन को अधिक महफूज समझा था । पर किसान में ताकत ही नहीं, व्यावहारिक बुद्धि भी चाहिए, जिसका महावीर में नितान्त अभाव था । लिहाजा सारी जमीन हरनारायण ने हड़प ली और मुंशी गुरसहाय का परिवार जहाँ का तहाँ आ गया । प्रस्तुत उपन्यास का ज्ञानशंकर हमें हरनारायण की

चाचा प्रभाशंकर के चरित्र में हमें मुंशी अजायबलाल के गुण मिलते हैं, फर्क यह है कि मुंशीजी सरकारी मुलाजिम हैं, आर्थिक तंगी में पाए जाते हैं और प्रभाशंकर जमींदार हैं। परन्तु दोनों परोपकारी हैं। दयालु हैं। दूसरों के लिए मददकर्ता हैं। दोनों में परिवार-परस्ती पायी जाती है। प्रेमशंकर, मायाशंकर आदि में हमें स्वयं प्रेमचन्द के गुण मिलते हैं। बचपन में नवाब पर महात्मा गाँधी का प्रभाव था। यह प्रभाव हमें प्रेमशंकर तथा मायाशंकर दोनों चरित्र में मिलते हैं।

अनमेल-विवाह की छवि यहाँ दूसरे स्तर की है। ज्ञानशंकर और विद्यावती के गुणों में कोई मेल नहीं। पति की मक्कारी और धूर्तता के कारण ही अन्ततः वह आत्महत्या कर लेती है।

कायाकल्प :

यह उपन्यास हिन्दी आलोचकों को अजूबा-सा लगता है। "प्रेमाश्रम" में प्रेमचन्द यथार्थ के मार्ग पर जितना आगे बढ़े थे, "कायाकल्प" में वे उतना ही वापस लौटे हुए मालूम पड़ते हैं। डा. मन्मथनाथ गुप्त इसे प्रेमचन्द की सर्वाधिक शिथिल रचना मानते हैं।[50] सैयद हामिदअली हाशिम" लिखते हैं — " प्रेमचन्द जैसे यथार्थवादी लेखक की कलम से जब आवागमन के सम्बन्ध में अलौकिक और विचित्र घटनाएं निकलती हैं तो आश्चर्य से आँखें खुली रह जाती हैं। जगदीशपुर के राजा के तीन जन्म और क्रमशः प्रत्येक जन्म की स्मरण-शक्ति अजीब है। रानी देवप्रिया का चरित्र केवल फरिश्ते ही समझ सकते हैं।"[51]

किन्तु शैशवकालीन प्रभावों की दृष्टि से देखा जाए तो बात कुछ समझ में आती है। प्रेमचन्द ने अपने शैशव में "तिलस्मे-होशरूबा" तथा "चन्द्रकान्ता" जैसी रचनाओं को खूब पढ़ा था। दूसरे

उपन्यासों पर प्रेमचन्द का चिन्तक कुछ सवार-सा हो गया है, किन्तु यहाँ बचपन का वह तिलस्म फिर मौजूद है । यहाँ प्रेमचन्द स्वयं को खत्री की परंपरा से जोड़ते-से प्रतीत होते हैं ।

राजा विशालसिंह के तीन रानियाँ हैं । अब बूढ़े हो चले हैं, फिर भी अपने दीवान की बेटी मनोरमा पर लट्टू हो गये हैं, इसमें कुछ-कुछ मुंशी अजायबलाल की छवि झाँकती-सी मिलती है । चक्रधर मनोरमा को चाहता है, पर पा नहीं सकता । अनमेल ब्याह की घटनाएँ यहाँ भी हैं । चक्रधर आदर्शवादी है, ठीक वैसे जैसे बालक नवाब आदर्शवादी था । प्रेमचन्द विधवा शिवरानी देवी से विवाह करते हैं । चक्रधर अहल्या से विवाह करता है, जिसके बारे में यह अफवाह फैला था कि दंगों में उसे मुसलमान उठाकर ले गए थे ।

निर्मला :

"निर्मला" नारी-जीवन की एक महान त्रासदी है । प्रेमचन्द ने अपने बचपन में अपने घर में अनेक स्त्रियों की त्रासदी को देखा है । अपने आसपास के समाज में उन्होंने यह सब देखा होगा । प्रस्तुत उपन्यास इन सबकी परिणति लगता है । इसमें दहेज की समस्या के कारण एक फूल-सी कोमल लड़की का कितना बुरा हश्र होता है, यह लेखक ने दिखाया है । निर्मला के पिता उदयभानु की अकस्मात हत्या हो जाती है । दहेज न मिलने की आशा में उसका रिश्ता टूट जाता है । अतः उसकी माँ निर्मला का ब्याह तोताराम नामक एक दुहाजू से कर देती है । तोताराम एक बाल-बच्चेदार वकील है । उसकी विधवा बहन रुक्मणी साथ में रहती है । तोताराम के तीन लड़के हैं — मंशाराम, जियाराम और सियाराम । बड़ा लड़का मंशाराम निर्मला की उम्र का है । तोताराम प्रायः

वृद्ध अवस्था को पहुंच चुके हैं । हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में बता चुके हैं कि प्रेमचन्दजी को अपने पिता की दूसरी शादी पसंद नहीं थी और उसके कारण उनके अन्तर्मन में अपने पिता के प्रति घृणा-भाव भी था । प्रेम-चन्द ऐसे वृद्ध-विवाहों के परिणामों को दिखाना चाहते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते हैं कि अच्छे स्वभाव के बावजूद निर्मला-तोताराम का दाम्पत्य बुरी तरह से असफल रहता है । अनमेल विवाह, निर्मूल आशंका और भाभी-ननद के झगड़ों के कारण तोताराम की सुखी गृहस्थी कलह का अखाड़ा बन जाती है ।

तोताराम वृद्ध हैं । अतः निर्मला का प्रेम पाने के लिए रुक्मणी-निर्मला के झगड़े में वे हमेशा निर्मला का पक्ष लेते हैं, परन्तु इससे कलह और बढ़ता है । तोताराम निर्मला को आकृष्ट करने के लिए हास्यास्पद प्रकार के प्रयोग करते हैं, परन्तु असफल रहते हैं । दूसरी ओर निर्मला अपना मन बच्चों में लगाने का प्रयत्न करती है । मंसाराम उसका हमउम्र है । अतः उसके साथ उसकी अच्छी पटती है । परन्तु तोताराम को इन निर्दोष-पवित्र संबंधों में वासना की बू आती है । अतः मंसाराम को वे होस्टेल में डाल देते हैं । मंसाराम पर जब यह रहस्य खुलता है, तब मारे आघात के बीमार हो जाता है और उसबीमारी में ही दम तोड़ देता है । जियाराम के मन में यह गांठ बन जाती है कि मंसाराम की असमय मृत्यु के मूल में उसकी सौतेली माँ निर्मला है । अतः वह आवारा और उद्दण्ड हो जाता है । एक दिन वह निर्मला के आभूषणों की चोरी करता है । चोरी का भेद खुल जाने पर वह आत्महत्या कर लेता है ।

उसके बाद निर्मला एक कन्या को जन्म देती है । उसके बाद वह अधिक कंजूस हो जाती है । एक-एक पैसा बचाने के लिए सियाराम से वह जब-तब उलझ जाती है । इन सब कारणों से तोताराम की प्रेक्टीस भी अच्छी नहीं चलती । घर में हमेशा क्लेश का वाता-

वरण बना रहता है । अतः छोटा लड़का सियाराम भी साधुओं के साथ भाग जाता है । तोताराम बेटे को ढूंढने को निकलते हैं, तो तब लौटते हैं जब निर्मला की चिता को आग देनी होती है ।

यहाँ प्रेमचन्द ने वृद्ध-विवाह के भयानक परिणामों को रेखांकित किया है, जिसमें उनके बाल-मानस पर पड़े हुए प्रभाव भी कारणभूत हैं । स्वयं प्रेमचन्द को ऐसे कलहपूर्ण वातावरण से गुजरना पड़ा है । सौतेली माँ के त्रास को उन्होंने भी झेला है । परन्तु यहाँ उसका विलोम दृष्टिगत होता है । निर्मला का व्यवहार अपने सौतेले बेटों के प्रति अच्छा था । साहित्यकार अपनी सृष्टि में कई बार ऐसा भी करता है । इसके मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं । जो उसे वास्तविक जीवन में नहीं मिलता उसकी आपूर्ति वह अपने लेखन में करता है । वह बताना चाहता है कि सौतेली माँ ऐसी होनी चाहिए । दूसरे शायद प्रेमचन्दजी इसमें स्त्री का दोष कम देखते हैं । एक स्त्री जिसके अरमानों को कुचल दिया गया हो, एक अनचाहे वृद्ध से जिसे शादी करनी पड़ी हो, उसका व्यवहार यदि कर्कश दाहक न हो तो ही आश्चर्य होना चाहिए ।

गबन :

यह उपन्यास मध्यम वर्ग के जीवन को लेकर लिखा गया है । मध्यवर्ग का जीवन बनावटी और दिखावटी होता है । झूठे रीति-रिवाजों का बोझ वही वर्ग उठाता है । अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है । प्रस्तुत उपन्यास का दयानाथ भी एक मध्यवर्गीय चेतना का व्यक्ति है । "सेवासदन" के कृष्णचन्द्र की भाँति वह भी ईमानदार है । रिश्वत लेने की सुविधा होने पर भी वह उसे हराम समझता है । पर बेटे के विवाह में हैसियत से ज्यादा खर्च कर बैठते हैं और कर्ज से लद जाते हैं । लेनदारों के तगादे जब बढ़ जाते हैं, तब बाप-बेटे मिलकर नववधू जालपा

के गहनों को उड़ा लेते हैं और चोरी चले जाने का बहाना बनाते हैं। कृष्णचन्द्र को रिश्वत लेनी पड़ती है, दयानाथ को भी अनैतिक तरीके का आश्रय लेना पड़ता है। दयानाथ का लड़का रमानाथ भी एक मध्य-वर्गीय चरित्र का युवक है। मध्यवर्ग के तमाम दुर्गुण और कमजोरियाँ यहाँ यथार्थतः चित्रित हैं। डा. मन्मथनाथ गुप्त ने इसी सबब इस उपन्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। "इसमें मध्यवित्त वर्ग का जैसा चित्र खींचा गया है, उसकी कमजोरियाँ जिस नग्न रूप में हमारे सम्मुख आती हैं, वह भारतीय साहित्य में अतुलनीय है। शरत्‌बाबू अपने उपन्यासों में मध्यवित्त वर्ग को चित्रित करते हैं, जहाँ तक स्त्री-पुरुष के संबंध हैं, इस वर्ग को वे बहुत सुंदर रूप से चित्रित करते हैं, उस क्षेत्र में उनका अभी तक कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। मूक अवहेलिता, निर्यातिता नारी उनके उपन्यास में वाचाल हो जाती है, किन्तु वे भी किसी एक उपन्यास में यह नहीं दिखा पाये कि यह जो मध्यवित्त वर्ग है, वह कितना सड़ा-गला है, तथा उसके अन्दर क्या-क्या रोग हैं, जो उसे पंगु बनाकर समाज के नेता वर्ग होने में असमर्थ कर देते हैं। ... आंशिक रूप से शिथिल होते हुए भी गबन में हम यह जो एक वर्ग का सजीव चित्रण पाते हैं, यह कुछ कम देन नहीं है। यद्यपि मामूली समालोचकों ने इस उपन्यास को अधिक महत्व नहीं दिया, किन्तु यह उपन्यास बहुत यथार्थवादी है, इसमें संदेह नहीं। श्री रामरतन भटनागर ने यह लिखा है कि रमानाथ प्रेमचन्द का प्रथम यथार्थवादी नायक है, और गबन प्रथम यथार्थवादी उपन्यास है, हम इससे केवल सहमत ही नहीं है, बल्कि हम इसमें इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि प्रेमचन्द के प्राक्-गोदान युग के उपन्यासों में दो ही उपन्यास यथेष्ट रूप से यथार्थवाद से हैं, एक निर्मला और दूसरा गबन।"52

मध्यवर्ग का जो इतना अच्छा सटीक चित्रण प्रेमचन्दजी कर सके हैं, उसके झूठे खोखलेपन की पर्तों को जो उधेड़ सके हैं, उसके

पीछे वे प्रभाव कारणभूत हैं जो नवाब के शैशवकालीन मानस-पटल पर अंकित हो गए थे ।

अधिकांश आलोचकों ने प्रस्तुत उपन्यास को गहनों के मोह की त्रासदी बताया है, किन्तु यदि इसके सामाजिक कारणों की पड़ताल की जाय तो ज्ञात होगा की गहने का मोह सामाजिक रोग का एक लक्षण है । यह मोह तमाम पुरुष-प्रधान मध्यवर्गीय समाज-पद्धतियों में पाया जाता है, क्योंकि ऐसे समाज में स्त्री की अपनी कोई वैयक्तिक संपत्ति नहीं होती । गहनों के रूप में ही नारी अपनी वैयक्तिक संपत्ति जोड़ सकती है । विपत्ति के समय में गहने काम आ सकते हैं । नवाब अपने बचपन में अपने घर-परिवार की स्त्रियों की दुर्दशा देख चुके हैं, जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया जा चुका है ।

उपन्यास में रमानाथ द्वारा चुंगी के रूपयों की गबन की समस्या है । यद्यपि बाद में जालपा रूपये जमा करवा देती है और रमानाथ पर गबन का कोई केस नहीं बनता, तथापि रमानाथ बेइज्जती और फजीहत के डर से भाग जाता है । "गबन" की घटनाएं तो नवाब के चाचा उदितनारायण के साथ घट चुकी है और घर से भागने की भी कइएक घटनाएं उनके परिवार में हो चुकी हैं, जिनका प्रभाव या दुष्प्रभाव नवाब के बाल-मानस पर अंकित हुआ ही होगा, जिसे हम प्रस्तुत उपन्यास में लक्षित कर सकते हैं ।

रंगभूमि :

शैशवकालीन गरीबी और अभाव के कारण प्रेमचन्द ने जिन अमर पात्रों की सृष्टि की है, उनमें "रंगभूमि" का "सूरदास" भी है । सूरदास बड़ा कष्टसहिष्णु नायक है । प्रेमचन्द भी कष्टसहिष्णु

थे । जिस लेखक ने बचपन में संघर्ष किया हो , उसके मन में बच्चों के प्रति असीम संवेदना होती है । प्रस्तुत उपन्यास का सूरदास मिठुआ नामक बच्चे पर अपनी जान छिड़कता है । मिठुआ के माँ-बाप प्लेग में मारे गये थे । सूरदास ही उसे पाल-पोसकर बड़ा करता है । अपने हिस्से की मिठाई भी वह उसे खिला देता है । प्रेमचन्दजी इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं —

" तीन साल से उसके पालन-पोषण का भार सूरदास पर ही था । वह इस बालक को प्राणों से भी प्यारा समझता था । आप चाहे फाके करे , पर मिट्ठू को तीन बार अवश्य खिलाता था । आप मटर चबाकर रह जाता था , पर उसे शक्कर और रोटी , कभी घी और नमक के साथ रोटियाँ खिलाता था । अगर कोई भिक्षा में मिठाई या गुड़ दे देता , तो उसे बड़े यत्न से अंगोछे के कोने में बाँध लेता और मिट्ठू को ही देता था । सबसे कहता , यह कमाई बुढ़ापे के लिए कर रहा हूँ । अभी तो हाथ-पैर चलते हैं , माँग खाता हूँ , जब उठ-बैठ न सकूँगा , तो लोटा-भर पानी कौन देगा ? मिट्ठू को सोते पाकर गोद में उठा लिया , और झोंपड़ी के द्वार पर उतारा । फिर द्वार खोला , लड़के का मुँह धुलाया, और उसके सामने गुड़ और रोटियाँ रख दीं । मिट्ठू ने रोटियाँ देखीं , तो ठुनककर बोला — मैं रोटी और गुड़ न खाऊँगा । ... तो क्या खाओगे बेटा ? ... मैं तो दूध -रोटी खाऊँगा । बेटा, इस जून खा लो । सबेरे मैं दूध ला दूँगा । "[53]

जिस लेखक ने पारावार गरीबी देखी हो वही इस प्रकार के पात्रों का आलेखन कर सकता है । सूरदास जीवट वाला पात्र है । जुझारू है , संकल्पशील है । प्रेमचन्द ने भी खूब संघर्ष किया है और इस संघर्ष की शुरुआत बचपन और कैशोर्य से ही हो गई थी । सूरदास का मानना है , हार भी गये तो क्या ? जीत भी गये तो क्या ? खिलाड़ी का एकमात्र कर्तव्य है खेलना । सूरदास के

दृढ़ चरित्र का पता वहाँ चलता है, जहाँ वह मिठुआ के साथ वार्तालाप करता है। भैरों जब सूरदास का झोंपड़ा जला देता है, तब मिठुआ पूछता है :

" मिठुआ — दादा अब हम रहेंगे कहाँ ?
सूरदास — दूसरा घर बनायेंगे।
मिठुआ — और जो कोई फिर आग लगा दे ?
सूरदास — तो फिर बनायेंगे।
मिठुआ — और फिर लगा दे ?
सूरदास — तो हम भी फिर बनायेंगे।
मिठुआ — और जो कोई हजार बार लगा दे ?
सूरदास — तो हम हजार बार बनायेंगे। " [54]

यह चरित्रगत दृढ़ता सूरदास की ही नहीं, प्रेमचन्द की भी है और उसके लिए शैशवकालीन प्रभावों को नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकते।

किशोरावस्था में ही प्रेमचन्द के कंधों पर सौतेली माँ और उसके दो बेटों का बोझ आन पड़ा था। उसके कारण प्रेमचन्द की माली हालत हमेशा खराब रही। कर्ज़ में डूबे रहे। प्रस्तुत उपन्यास का ताहिरअली प्रेमचन्द का ही प्रतिरूप है। उसकी स्थिति वास्तव में दयनीय है। विमाता और उसके बच्चे तथा अपने बीबी-बच्चे के पालन-पोषण में वह बेचारा पिसता जा रहा है। अपने घर के तात्कालिक खर्चों के लिए वह कई बार आफ़िस से रुपये उठा लाता है। बाद में जमा कर देता है। उसकी नीयत खराब नहीं होती है। पर मजबूरी में उसे यह काम करना पड़ता है। एक बार मालिक जान-सेवक को हिसाब में कुछ गड़बड़ दिखती है। वह ताहिरअली की एक बात नहीं सुनता और पुलिस को बुलाकर उसे पुलिस के हवाले कर देता है। गबन के जुर्म में उसे सज़ा हो जाती है। उसका भाई माहिरअली, जिसको ताहिरअली ने ही पढ़ाया था, और जो पुलिस में नौकरी

करता था, ऐसी अवस्था में भी ताहिरअली की सहायता नहीं करता और इसके बीवी-बच्चे मारे-मारे फिरते हैं। सूरदास की मृत्यु के समय जानसेवक भी सूरदास को मिलने जाता है। तब सूरदास जानसेवक से प्रार्थना करता है कि वह ताहिरअली को फिर से नौकरी में रख ले, क्योंकि उसके बाल-बच्चों की हालत बहुत खराब है। तब जानसेवक कहता है — "मुझे अत्यन्त खेद है कि तुम्हारे आदेश का पालन न कर सकूँगा। किसी नीयत के बुरे आदमी को आश्रय देना मेरे नियमों के विरुद्ध है, मैं उसे सह नहीं सकता। ... मैं इतना कर सकता हूँ कि ताहिरअली के बाल-बच्चों का पालन-पोषण करता रहूँ। लेकिन उसे नौकर न रखूँगा।" 55

अतः कहा जा सकता है कि ताहिरअली वाला पूरा प्रसंग प्रेमचंद के वैयक्तिक जीवन के यथार्थ पर आधृत है।

कर्मभूमि :

"कर्मभूमि" सन् 1932 की रचना है। इस उपन्यास की सामग्री तत्कालीन सत्याग्रह आंदोलन से ली गई है, तथापि कुछ बातें हैं जिनमें नवाब के शैशवकालीन जीवन को टोहा जा सकता है। अमरकान्त की माँ भी बचपन में ही दिवंगत हो गयी थी और उसके पिता ने भी दूसरा ब्याह किया था। बचपन में माँ का गुजर जाना कोमल हृदय के बच्चे पर कहर ढाता है। माँ का प्यार सच्चा और निःस्वार्थ होता है और उसमें सांसारिक व्यावहारिकता की बू नहीं होती। गुजराती में एक लोकोक्ति है — "माँ ते माँ बीजा बधा वगडाना वा" — अर्थात् माँ का स्थान कोई नहीं ले सकता। गुजराती में एक काव्य-पंक्ति भी मिलती है — "जननीनी जोड सखी नहि जडे रे लोल" — अर्थात् जनेता माँ की बराबरी दुनिया की कोई वस्तु

नहीं कर सकती । बाप भी अपने बच्चों को चाहता है, पर उतना नहीं चाह सकता, जितना कि माँ चाहती है, क्योंकि माँ बच्चे को नौ महीने अपनी कोख में रखती है । पहले खून और बाद में दूध पिलाकर उसे पालती-पोसती है । बाप का प्रेम सामाजिक प्रकार का होता है, लेकिन माँ का प्रेम तो नैसर्गिक होता है । अतः बचपन में जब किसीकी माँ का देहान्त हो जाता है, तो उसे एक बड़ी ट्रेजडी समझना चाहिए, क्योंकि वह एक दिन, एक महीने, एक साल या कुछ सालों का दुःख नहीं होता । दुःखों की एक अनवरत प्रवहमान वैतरणी शुरू हो जाती है । बच्चे का ख्याल करके बाप यदि दूसरा ब्याह न करे तो भी माँ के अनमोल प्यार-दुलार से तो वह बच्चा वंचित रह ही जाता है और यदि बाप दूसरा ब्याह रचा लेता है, तब तो उस बच्चे का बुरा हाल होता है । ऐसी स्थिति में सौतेली माँ यदि अच्छी हुई, तो भी घर-परिवार और समाज वाले उसे ऐसी चित्रित करते हैं कि बच्चे के मन में एक गाँठ-सी पड़ जाती है । दूसरे बच्चों को अपनी माँओं के साथ देखकर उसका ज्यां हमेशा दुखता रहता है । प्रेमचन्द के शब्दों में कहें तो उसकी रूह हमेशा-हमेशा के लिए प्यासी रह जाती है ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि नवाब की माँ का निधन आठ साल की अवस्था में ही हो गया था । अतएव ज़िन्दगीभर माँ के प्यार में वे तड़पते और आठ-आठ आँसू बहाते रहे हैं । प्रेमचन्द में इस दर्द का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) हो गया है, तथापि अनेक कृतियों में वह कराह कहीं-न-कहीं मिल ही जाती है । "कर्मभूमि" उपन्यास में अमरकान्त के रूप में मानो प्रेमचन्द ही कह रहे हैं —

" ज़िन्दगी में वह उम्र, जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है । उस वक्त पौधे को तरी मिल जाय, तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो

हो जाती हैं । उस वक्त खुराक न पाकर उसकी ज़िन्दगी खुश्क हो जाती है । मेरी माता का उसी जमाने में देहान्त हुआ , और तबसे मेरी रूह को खुराक नहीं मिली । वह भूख मेरी ज़िन्दगी है । मुझे जहाँ मुहब्बत का एक रेजा भी मिलेगा , मैं बेअख्तियार उसकी तरफ जाऊँगा । कुदरत का अटल कानून मुझे उस तरफ ले जाता है । इसके लिए अगर मुझे कोई खतावार कहे , तो कहे । मैं इसे अपनी खता तसलीम नहीं करता । दुनिया में सबसे बदनसीब वह है , जिसकी माँ बचपन में मर गई हो । " 56

गोदान :

प्रेमचन्दजी का जीवन सदैव आर्थिक अभावों में व्यतीत हुआ है । जब माँ थी , तब भी आर्थिक अभाव तो थे ही , पर माँ के कारण उसकी तिक्तता कुछ कम हो जाती थी , परन्तु माँ की मृत्यु के बाद तो अभाव ने उसे सीधे प्रत्यक्षतः झेला है । शैशव-कालीन xxxxxx आर्थिक अभाव के कारण प्रेमचन्दजी की एक निश्चित जीवन-दृष्टि बन गई थी । इस दृष्टि के रहते वे हमेशा गरीबों के पक्षधर रहे हैं । महाभारत में बभ्रुवाहन की कथा आती है । बभ्रुवाहन अर्जुन का पुत्र था , पर उसे पता नहीं था कि वह अर्जुन का पुत्र है । युद्ध के समय वह माँ से पूछता है कि उसे किसकी तरफ से लड़ना चाहिए । बभ्रुवाहन की माँ यह सोचकर कि पांडव कम हैं , अतः उनकी हार निश्चित है , कहती है कि उसे xxxxxx हारने वालों की ओर से लड़ना चाहिए । लेखक या कवि का भी यही धर्म होना चाहिए — बभ्रुवाहनी धर्म । सच्चा लेखक , बड़ा लेखक हमेशा पराजित मानवता का पक्षधर रहता है । "गोदान" में हमें लेखक की यही पक्षधरता मिलती है । पराजित मानवता के पक्षधर होने के कारण ही , सामंतवाद और पूंजीवाद का विरोध "गोदान" में मिलता है । यही कारण है कि अदालत और पुलिस

आदि का चित्रण वे सदैव काले रंग में ही करते रहे हैं। "गोदान" में होरी का भाई हीरा पारिवारिक विद्वेष के कारण होरी की गाय को जब विष देकर मार डालता है, तब उसी भाई को पुलिस-केस से बचाने के लिए होरी महाजन से कर्ज लेकर पुलिस को घूस के रुपये देता है। इस घूस में पुलिस के दारोगा तथा गांव के पटवारी दोनों का हिस्सा है। यह कैसा न्याय? गाय जाती है और ऊपर से रिश्वत के पैसे देने पड़ते हैं।

शैशवकालीन प्रभावों के कारण प्रेमचन्द का साहित्य गरीब-दलितों का साहित्य हो जाता है। अमीरों के प्रति उनके मन में एक प्रकार का घृणा-भाव दिखता है। एक पत्र में वे लिखते हैं —

" जो व्यक्ति धन-संपदा में विभोर और मग्न हो, उसके महान पुरुष होने की कल्पना मैं नहीं कर सकता। जैसे ही किसी आदमी को मैं धनी पाता हूं, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बातों का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे जान पड़ता है कि इस शख्स ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को — उस सामाजिक व्यवस्था को, जो अमीरों द्वारा गरीबों के दोहन पर अवलंबित है — स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार किसी भी बड़े आदमी का नाम जो लक्ष्मी का कृपापात्र भी हो मुझे आकर्षित नहीं करता। बहुत मुमकिन है कि मेरे मन में इन भावों का कारण जीवन में मेरी असफलता ही हो। बैंक में मोटी रकम जमा देखकर शायद मैं भी वैसा ही होता, जैसे दूसरे हैं, मैं भी प्रलोभन का सामना न कर सकता, लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि स्वभाव और किस्मत ने मेरी मदद की है और मेरा भाग्य दरिद्रों के साथ सम्बद्ध है। इससे मुझे आध्यात्मिक सान्त्वना मिलती है। "[57]

"गोदान" के रायसाहब को कुछ उदार चित्रित करते हुए भी उनके चरित्र की मूलगत रेखाओं को प्रेमचंदजी ने बखूबी उकेरा है —

" पिछले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेंबरी छोड़कर जेल चले गये। तबसे उनके इलाके के असामियों को बड़ी श्रद्धा हो गई थी। ये नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक नहीं लग सकता था।" [58]

प्रेमचन्दजी ने यहाँ कांग्रेसी जमींदारों के चरित्र को अच्छी तरह उधेड़ा है। रायसाहब लोगों में हीरो बनने जेल भी चले जाते हैं और दूसरी ओर अंग्रेजों के कृपाकांक्षी बने रहने के लिए अफसरों की चापलूसी भी करते हैं। प्रोफेसर मेहता रायसाहब की दुखती रग पर हाथ रख देते हैं — " मानता हूँ, आपका आपके असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं, इसका एक कारण क्या यह नहीं है कि मद्धिम आँच में भोजन स्वादिष्ट पकता है। गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं तो बकना छोड़ दें।" [59]

इस प्रकार भेड़िये यहाँ मेमने बनकर आए हैं। दूसरी तरफ होरी का चित्रण लेखक ने मानवीय संवेदना के साथ किया है। होरी कोई दूध का धुला व्यक्ति नहीं है, किन्तु फिर भी वह अपने शोषकों से काफी अच्छा है। अगर वह भाई को धोखा देता है, तो उसीको पुलिस से बचाने के लिए वह महाजन से कर्ज भी तो

लेता है । इसके अतिरिक्त बरसों तक वह अपने भाई की स्त्री को पालता भी है । पहले बताया जा चुका है कि मुंशी अजायबलाल ने भी अपने भाइयों की स्त्रियों को पाला-पोसा था ।

"गोदान" की मुख्य समस्या ऋण की समस्या है । यह ऋण की समस्या मुंशी अजायबलाल की भी थी और प्रेमचन्द की थी ।

अजायबलाल की दूसरी शादी की प्रतिक्रिया प्रेमचन्द में है । इस दूसरी शादी के कारण ही उन्हें सौतेली माँ का त्रास सहना पड़ा । उनकी मृत्यु के बाद परिवार का बोझ ढोना पड़ा । इन सब कारणों से नवाब अपने कैशोर्य में पिता पर चिढ़े हुए रहते थे , पिता-पुत्र में यह तनाव की स्थिति हम होरी और गोबर में भी देखते हैं ।

नवाब ने अपने बचपन में माँ की मृत्यु के उपरांत जो पारिवारिक जीवन देखा है , उसमें कलह और क्लेश का वातावरण अधिक रहा है । अतः "गोदान" में भी हमें सास-बहू के झगड़ों का यथार्थ चित्रण मिलता है ।

नवाब के बचपन का एक अविस्मरणीय प्रसंग है मामू और चम्पा चमारिन वाला प्रसंग । नवाब की सौतेली माँ के भाई उनके साथ रहते थे । वे नवाब पर बहुत रुआब जमाते रहते थे । चम्पा से उनको प्रेम हो जाता है । एक बार वे रंगे हाथों पकड़े जाते हैं और उनकी बहुत बुरी तरह से पिटाई होती है । इस प्रसंग को लेकर नवाब मामू की खिल्ली उड़ाने की नीयत से एक ड्रामा लिख डालते हैं । मामू उस ड्रामा को तो जला डालते हैं पर उस दिन से वहाँ से भी दो ग्यारह हो जाते हैं । इस संदर्भ में अमृतराय

लिखते हैं :—

" यह नवाब के साहित्यिक जीवन का पहला पाठ था, जिसे वह कभी नहीं भूला। और न शायद एक बार मामू की छीछालेदर करने से उसका जी भरा क्योंकि चालीस बरस बाद "गोदान" की सिलिया और मातादीन के रूप में धन्या और मामू साहब फिर जी उठे।"[60]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेमचंद के प्रायः सभी उपन्यासों में शैशवकालीन प्रभावों का अंकन किसी-न-किसी रूप में दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित भिन्न निष्कर्षों तक सहजतया पहुँच सकते हैं :—

[1] शैशवकालीन अनुभवों का महत्व एक लेखक के जीवन में सर्वाधिक होता है, अतः उसके कृतित्व को जाँचने-परखने का एक मानदण्ड यह भी हो सकता है।

[2] नवाब के दादा के यहाँ जायदाद थी, परंतु उनके भतीजे ने धोखाधड़ी से नवाब के दादा से छीन छप ली। अतः उनका परिवार आर्थिक बेहाली की चपेट में आ गया। नवाब के पिता मुंशी अजायबलाल पर अपने भाइयों के घर-परिवार का उत्तरदायित्व आ जाने से वे हमेशा आर्थिकतया तंगदस्ती में रहे। उसका प्रभाव परिवार पर भी देखा जा सकता है।

[3] आर्थिक तंगदस्ती में भी माँ के राज्य में नवाब की ज़िन्दगी — बचपन के दिन — मस्ती से कट रही थी।

§4§ आठ साल की उम्र में नवाब की माँ का देहान्त हो गया । वहाँ से उसके जीवन का दुर्भाग्य शुरू हो गया ।

§5§ माँ की मृत्यु के उपरांत पिताने दूसरा ब्याह कर लिया । सौतेली माँ का त्रास उसे झेलना पड़ा ।

§6§ सौतेली माँ के कहने पर नवाब के पिता ने नवाब की शादी एक बेहद कुरूप स्त्री से कर दी । वह उम्र में भी नवाब से बड़ी थी । स्वभाव भी झगड़ालू झगड़ालू था । फलतः नवाब की ज़िन्दगी जहर हो गयी ।

§7§ सत्रह साल की उम्र में नवाब के पिता का देहान्त हो गया । अतः सौतेली माँ, सौतेले भाई, बहनों आदि सभी की जिम्मेदारी नवाब पर आ गयी । नवाब को आर्थिक-पारिवारिक संघर्ष से गुजरना पड़ा ।

§8§ आर्थिक अभाव, दरिद्रता, जीवन-संघर्ष, माँ के प्यार की तड़प, अनमेल विवाह की त्रासदी, अभिशप्त शैशव, अनुरक्षा की भावना जैसे शैशवकालीन प्रभावों का आलेखन प्रेमचन्दजी के "वरदान" से लेकर "गोदान" तक के सभी उपन्यासों में दृष्टिगत होता है ।

======= XXXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ " हैमिंग्वे : ओल्ड मैन एण्ड द सी " : डा. आर.टी. जैन : पृ. 17.

§2§ ए ट्रीटाइज़ आन द नौवेल : रोबर्ट लिडले : पृ. 43.

§3§ इबिड :पी. 39.

§4§ इबिड : पी. 233.

§5§ द्रष्टव्य : जाग का सिपाही : अमृतराय : पृ. 5 ।

§6§ वही : पृ. 6 ।

§7§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 7.

§8§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 8.

§9§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 7 ।

§10§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 8 ।

§11§ वही : पृ. 9 ।

§12§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 9 ।

§13§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 9 ।

§14§ वही : पृ. 9-10 ।

§15§ वही : पृ. 10 ।

§16§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 11 ।

§17§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 11 ।

§18§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 11 ।

§19§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 11 ।

§20§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 12-13 ।

§21§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 13 ।

§22§ उद्धृत द्वारा : डा. हंसराज रहबर : " प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : पृ. 2 ।

(23) " प्रेमचन्द : जीवन , कला और कृतित्व " : डा. हंसराज रहबर : पृ. 2 ।

(24) कलम का सिपाही : पृ. 23 ।

(25) लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा. मनोहर बंदोपाध्याय : पी. 5 ।

(26) द्रष्टव्य : कलम का सिपाही : पृ. 13 ।

(27) वही : पृ. 17 ।

(28) वही : पृ. 18 ।

(29) वही : पृ. 19 ।

(30) लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : पी. 5 ।

(31) इबिड : पी. 6 .

(32) कलम का सिपाही : पृ. 30 ।

(33) सी : लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : पी.7 .

(34) कलम का सिपाही : पृ. 34 ।

(35) वही : पृ. 35 ।

(36) सी : लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : पीपी. 8-9-10.

(37) द्रष्टव्य : कलम का मजदूर : मदनगोपाल : पृ. 33 ।

(38) लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : पीपी. 9-10.

(39) " प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : डा. हंसराज रहबर : पृ. 20 ।

(40) कलम का सिपाही : पृ. 46-47 ।

(41) द्रष्टव्य : वही : पृ.9 ।

(42) द्रष्टव्य : वही : पृ. 9 ।

(43) द्रष्टव्य : वही : पृ. 9 ।

(44) द्रष्टव्य : वही : पृ. 9 ।

(45) द्रष्टव्य : वही : पृ. 10 ।

§46§ " प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : डा. हंसराज रहबर : पृ. 175 ।

§47§ कलम का सिपाही : पृ. 14 ।

§48§ " प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : पृ. 178 ।

§49§ वही : पृ. 181 ।

§50§ द्रष्टव्य : "प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : पृ. 188 ।

§51§ वही : पृ. 188 ।

§52§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : डा. मन्मथनाथ गुप्त : §49=§50xx1xx 288-289 ।

§53§ रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 17-19 ।

§54§ वही : पृ. 117 ।

§55§ वही : पृ. 551 ।

§56§ कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 114-115 ।

§57§ " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : 249-250

§58§ गोदान : पृ. 16 ।

§59§ वही : पृ. 57 ।

§60§ कलम का सिपाही : पृ. 30 ।

====== xxxxxx ========